खिलौने वाला घोड़ा
लेखिका: दीपा अग्रवाल
प्रकाशक: चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
चित्रकार: अजन्ता गुहाठाकुरता
मूल्य: 18 रुपए

खिलौने वाला घोड़ा

समीक्षा - तेजी ग्रोवर

खिलौने वाला घोड़ा अंग्रेज़ी में लिखी गई पुस्तक 'द टॉय हॉर्स' का हिन्दी अनुवाद है। 'बंजारा जाति' की एक लड़की रामी इस कहानी के केन्द्र में है, उसका परिवार किसी शहर की एक सड़क के किनारे खड़ी अपनी गाड़ी में रहता है। पिता लोहे के औज़ार बनाकर बेचते हैं और मां रंग-बिरंगे घोड़े।

कहानी इस घटना पर केन्द्रित है कि कैसे खिलौने वाले घोड़े के लिए ज़िद करती रामी अपने लिए खुद एक घोड़ा बनाने में सफल हो जाती है, और कैसे वह आखिरकार अपनी ही उम्र की सम्पन्न घर की एक लड़की को अपना घोड़ा दे देती है।

चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट द्वारा आयोजित एक प्रतियोगिता में यह पुस्तक पुरस्कृत हो चुकी है। इस किताब को इसलिए भी ज़रा गौर से देखने की ज़रूरत है ताकि हम पता लगा सकें कि समकालीन दृश्य पर किस तरह का बाल साहित्य पुरस्कार के योग्य समझा जाता है।

यह बात तो ज़रूर है कि सुश्री दीपा अग्रवाल के कहानी के पात्रों के चुनाव में एक नयापन हमें दिखाई देता है। हिन्दी बाल-साहित्य में बच्चा खुद कहानी के केन्द्र में रहे, ऐसा प्रायः नहीं होता है। दूसरे, मध्यम-वर्गीय परिवार और उनके रहने-सहने के ढंग ही प्रायः बच्चों के लिए लिखी जा रही किताबों में दर्शाए जाते हैं। 'खिलौने वाला घोड़ा' के कथानक में कई बाल-सुलभ भाव भी हमें देखने को मिलते हैं - रामी का घोड़े के लिए ज़िद करना, अपना घोड़ा बना लेने पर उससे अलग-अलग खेल खेलना, उसे लेकर तरह-तरह की कल्पनाएं करना, अपना घोड़ा बेचने से इन्कार करना, ग्राहक लड़की की रंग-बिरंगी गुड़िया देखकर ललचा जाना इत्यादि।

लेकिन दीपा अग्रवाल द्वारा लिखी गई यह कहानी ठीक इन्हीं कारणों से एक गहरी दृष्टि की मांग भी करती है। यह निश्चित ही एक ऐसी पुस्तक हो सकती थी जिससे हमें 'ईदगाह' जैसी कहानियों की स्मृति हो आती जिसमें मेले के लिए मिली हुई ज़रा-सी पूंजी से हामिद अपनी दादी के लिए एक चिमटा खरीद लाता है। इस कहानी में इस तरह की सम्भावना भी हो सकती थी जिससे शहरों में पल रहे मध्यम-वर्गीय बच्चे अपने देश के कुछ विलक्षण लोगों से एक आत्मीय परिचय पा लेते, जिसके लिए उन्हें आम जीवन में

कोई खास अवसर नहीं मिलते। लेकिन क्या 'खिलौने वाला घोड़ा' में ये सम्भावनाएं हैं?

कहानी में 'बंजारा जाति' के लोग कौन हैं? वे शहरों में अचानक कहां से और क्यों चले आते हैं? और जब हम लोग उन्हें सड़क के छोर पर बसा हुआ देखते हैं तो हमारे मन में उन्हें लेकर क्या भाव पैदा होते हैं? अगर कोई लेखक ऐसे पात्रों का चुनाव करता है तो उस पर क्या अतिरिक्त ज़िम्मेदारी आन पड़ती है? वह लेखक अगर अपने से बिल्कुल अलग किस्म की जीवन-शैली को लक्षित कर रहा है तो इसके लिए क्या अपने बने-बनाए दृष्टिकोण पर संशय का भाव उसके मन में जागृत होना चाहिए या नहीं?

लेखक की बात अगर न भी करें तो किसी भी ऐसे संवेदनशील व्यक्ति से यह उम्मीद रखना बेमानी नहीं है कि वह अपने शहर में रोज़गार ढूंढने शहरी परिवेश के बाहर से आए लोगों के बारे में कुछ जानने-समझने की कोशिश करे। हम यह नहीं कह रहे कि बच्चों को इन लोगों की पूरी आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति समझाने की कोशिश करनी चाहिए। दिक्कत तब पेश आती है जब लेखक भी इन पहलुओं से पूरी तरह बेखबर नज़र आता है और उसके लेखन में यह बेखबरी छिपी हुई नहीं रह पाती। ज़ाहिर है ऐसे लेखक या ऐसी संवेदनशीलता रखने वाले लोग तो विरले ही होते होंगे जो शहरी सुविधाओं (जैसे बिजली, पानी, सड़कें) और ग्रामीण व वन्य क्षेत्रों की बढ़ती हुई विपन्नता में सीधा संबंध देख पाते हैं।

ऐसे इलाकों के हमें न दिखाई देने वाले कुछ लोग जब हमारे बीच अचानक नमूदार हो जाते हैं तो वे हमें कैसे दिखते हैं? वे लोग जो अपने समूचे दुख को अपने मन में लिए शहर चले आते हैं। वे जिस 'समाज' में आते हैं, अपने बचे-खुचे परम्परागत कौशल लेकर, अपना क्षीण होता हुआ सौन्दर्य और स्वाभिमान लेकर, वह 'समाज' उनकी सेवाओं का भरपूर लाभ उठाते हुए भी उनके प्रति पूरी तरह उदासीन है। नहीं, उदासीन भी नहीं है - वह उनकी वेश-भूषा, उनके शृंगार और उनके सौन्दर्य का अलग से ग्राहक भी है, उनकी बनाई हुई अन्य चीज़ों के अलावा वे लोग 'जातीय' हैं, 'रंगीन' हैं, 'आदिवासी' हैं और आप उन्हें कहीं भी नचा-दिखा सकते हैं। उनकी बनाई हुई चीज़ें फैशन में हैं। कम लोग ही सोच पाते होंगे कि इस सौन्दर्य का मर्म क्या है, ये 'चीज़ें' इतनी आकर्षक कैसे बन जाती होंगी, और कि उन्हें उपभोग की वस्तुओं में बदल कर रख देना, और उन्हें लेकर सौदेबाज़ी करना किस रूप में देखा जाना चाहिए।

यह भी देखना चाहिए कि 'खिलौने वाला घोड़ा' में भाषा क्या भूमिका अदा कर रही है। दीपा अग्रवाल जिस परिवार को 'बंजारा जाति' के लोग कह रही हैं वे दरअसल 'बंजारा जाति' के लोग नहीं हैं। घुमक्कड़ समुदायों को सामान्य भाषा में बंजारे और खानाबदोश कह दिया जाता है, लेकिन 'बंजारा' एक विशिष्ट जनजाति है और परम्परागत रूप से वे लोग लोहे का काम नहीं करते, न ही कपड़े के घोड़े बनाते हैं। लेखिका ने पता लगाने की कोशिश भी नहीं की कि जो लोग उनकी कहानी के केन्द्र में हैं वे कहां से आए हैं और कौन

लोग हैं; और यह काम लेखक का नहीं तो और किसका है? फिर उन लोगों की गाड़ी पर बने चित्र इत्यादि सुन्दर हैं, रामी की मां का घाघरा 'अशर-पशर' की आवाज़ करता है। लेकिन ये विवरण तभी सार्थक होते अगर वे इस परिवार की अन्य परिस्थितियों के साथ तादात्म्य में होते; अगर ऐसा नहीं होता है तो वेश-भूषा, आभूषण, हस्तशिल्प इत्यादि उपभोग की 'विचित्र' चीज़ों में बदल कर रह जाते हैं, और ठीक ऐसा ही इस कहानी में होता है। वह सजी-धजी महिला जो अपनी बेटी के लिए घोड़ा खरीदना चाहती है बिना किसी संकोच के तपाक से बहुवचन में पूछती है - 'ये घोड़े कितने के हैं?' जैसे कि वह सारे-के-सारे घोड़े खरीद लेने वाली है।

रामी का बनाया हुआ घोड़ा जो उनकी बेटी को पसंद आता है उसकी 'टांगें टेढ़ी-मेढ़ी हैं,' और 'सिर एक ओर को लटका हुआ है।' बच्चे को केन्द्र में रखती हुई यह कहानी घोड़े के इस वर्णन में इतनी वयस्क दृष्टि कैसे रखे हुए है? क्या इस कहानी को पढ़ने वाले बच्चे रामी के घोड़े को इसी दृष्टि से देखेंगे कि वह टेढ़ा-मेढ़ा और लटका हुआ घोड़ा है? खासतौर से

तब जब वह घोड़ा खुद एक बच्चे का बनाया हुआ है?

बहरहाल, संदेश यह है कि घोड़ा चाहे टेढ़ा हो या सीधा, उसे पैसे से खरीदा जा सकता है, एक बच्चे की भावना का निरादर करके भी। मांगी गई कीमत से छह-आठ आने कम दिए जाएं या ज़्यादा बात एक ही है। लेकिन बात सिर्फ यहीं खत्म नहीं होती। एक प्लास्टिक की गुड़िया जो ग्राहक बच्ची के हाथ में है रामी को पहली नज़र ही में भा जाती है। और जब वह बच्ची इस गुड़िया के बदले में रामी से यह घोड़ा लेने का प्रस्ताव रखती है तो रामी यह कहकर कि घोड़ा तो वह कभी भी बना सकती है, खुशी-खुशी मान जाती है।

जो घटना बच्चों के बीच एक सहज और प्रसन्न व्यापार के रूप में हमारे सामने आती है, हमें ज़रूर उसकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मसलन कि अगर इस 'बंजारा' जगत के लिए लेखिका के मन में सम्मान की कोई भावना होती तो कहानी का अन्त भी यह नहीं होता।

हो सकता है रामी और वह गुड़िया वाली लड़की एक साथ मिलकर एक और घोड़ा बनाने में जुट जातीं। लेकिन यह प्लास्टिक की गुड़िया देकर घोड़ा ले लेने वाली बात उसी व्यापार की ही एक मिसाल है जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर आए हैं। और यह मुद्दा इस बात से जुड़ा हुआ भी है कि हम अपने बच्चों के लिए कैसा साहित्य लिख रहे हैं और पुरस्कृत कर रहे हैं।

इस किताब के चित्र भी पहली नज़र में बहुत आकर्षक लग सकते हैं, लेकिन दरअसल ये अपने विषय के साथ बिल्कुल भी तादात्मय में नहीं हैं। अलग-अलग पन्नों पर बनी हुई रामी की मां, रामी, पिता और गुड़िया वाली लड़की बिल्कुल अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं - रामी की मां के नयन-नक्श हर पन्ने पर बिल्कुल अलग हैं और इसी तरह बाकी सबके भी। सड़क का किनारा एक अच्छा-खासा टाइलों वाला ड्राइंग-रूम नज़र आता है।

कुल मिलाकर 'खिलौने वाला घोड़ा' हमारे लिए एक साथ कई प्रश्न खड़े कर देने वाली कहानी है। और इस किताब को चर्चा के लिए अपने पुस्तकालय में ज़रूर रख लेना चाहिए।

हो सकता है कि यह किताब बच्चों को अच्छी लगे, लेकिन बाल-साहित्य के मर्मज्ञ हमें बताते हैं कि हर ऐसी किताब जो बच्चों को अच्छी लगे, ज़रूरी नहीं कि सही में एक अच्छी किताब हो ही।

तेजी ग्रोवर: बाल साहित्य एवं बाल केन्द्रित गतिविधियों में गहरी रुचि है। कॉलेज स्तर पर अंग्रेज़ी का अध्यापन करती रही हैं। साथ ही हिन्दी में साहित्य निर्माण।

सभी चित्र: 'खिलौने वाला' घोड़ा पुस्तक से साभार। **चित्रकार: अजंता गुहाठाकुरता।**